7106

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ४ अंक ५ : सितम्बर १९८०

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON **Telephone : 22-4110 22-3323**

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet-Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ४ : अंक ५

सितम्बर १९८०

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

जैन विज्ञान १३३

वस्तुपाल-तेजपाल १३९

श्रीपाल १४२

हिन्दी जैन साहित्य १५१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १६०

जैन सरस्वती

जैन विज्ञान

[पूर्वानुवृत्ति]

—डा० हरिसत्य भट्टाचार्य

द्रव्य

द्रव्य की उत्पत्ति भी है और उनका विनाश भी है ऐसा हम सब मानते हैं। भारतवर्ष में बौद्ध और ग्रीस में Heralitus के शिष्य द्रव्य को अनित्य मानते थे, परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो, दिखलाई देनेवाले उत्पत्ति और विनाश में अर्थात् परिवर्तन मात्र के मूल में एक ऐसा तत्व रहता है जो सदैव अविकृत ही रहता है। उदाहरण के लिए स्वर्णालंकार के परिवर्तन में सोना तो वही का वही रहेगा—केवल उसके आकार में परिवर्तन होता रहता है। भारतवर्ष में वेदान्तियों ने और ग्रीस में Parmenides के अनुयायियों ने परिवर्तनवाद जैसी वस्तु को ही उड़ा दिया है। उन्होंने द्रव्य की नित्य सत्ता और अविकृति पर ही भार दिया है। स्याद्वादी जैन इन दोनों बातों को अमुक अपेक्षा से स्वीकार करते हैं और अमुक अपेक्षा से इनका परिहार करते हैं। वे कहते हैं कि सत्ता भी है और परिवर्तन भी है। यही कारण है कि वे द्रव्य का वर्णन करते समय उसे 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त' कहते हैं। अर्थात् (१) द्रव्य की उत्पत्ति है, (२) द्रव्य का विनाश है और (३) द्रव्य के भीतर एक ऐसा तत्व है जो उत्पत्ति-विनाशरूप परिवर्तन में भी अविकृत-अपरिवर्तित और अटूट रहता है।

द्रव्य, गुण, पर्याय

द्रव्य का विचार करने के समय उसके गुण और पर्याय पर भी विचार करना आवश्यक है। जैन लोग द्रव्य को कुछ अंशों में Cartesian के Substance के समान मानते हैं। द्रव्य के साथ जो चिरकाल अविच्छिन्न रूप से रहता है अथवा जिसके बिना द्रव्य, द्रव्य ही नहीं रहता उसे 'गुण' कहते हैं। द्रव्य स्वभावतः अविकृत रहकर अनन्त परिवर्तनों के भीतर जो दिखलाई देता है वह 'पर्याय' है। जैन जिसे पर्याय कहते हैं उसे Cartesian 'Mode' कहते हैं। जैन दृष्टि से पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच अजीव द्रव्य हैं। जीव भी द्रव्य है और सब मिलकर कुल छः द्रव्य हैं।

अवधिज्ञान

मति-श्रुतादि पंचविध ज्ञान में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान पर विचार किया गया है। अब अवधिज्ञानादि पर विचार करेंगे।

जो सब रूप-विशिष्ट द्रव्य स्थूल इन्द्रियों के लिए अगोचर हैं उनकी असाधारण अनुभूति का नाम 'अवधिज्ञान' है। आजकल जिसे Clairvoyance कहते हैं, कुछ अंशों में अवधिज्ञान की उसके साथ तुलना कर सकते हैं। अवधिज्ञान के तीन भेद हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। देशावधि दिशा और काल से सीमाबद्ध है। परमावधि असीम है। सर्वावधि के द्वारा विश्व के समस्त रूपयुक्त द्रव्यों का अनुभव हो सकता है।

मनःपर्याय

अन्य की चित्तवृत्ति के विषय के अनुभव का नाम 'मनःपर्याय ज्ञान' है। पाश्चात्य विज्ञान में इसे टेलीपैथी अथवा Mind-reading कहते हैं। मनः पर्याय ज्ञान के ऋजुमति तथा विपुलमति, ये दो भेद हैं। ऋजुमति संकीर्णतर है। विपुलमति की सहायता से विश्व के समस्त चित्त सम्बन्धी विषयों का सूक्ष्म अवलोकन है।

केवलज्ञान

चरमन्मुक्त जीवों के ज्ञान की यह एकदम अन्तिम मर्यादा है। 'केवल-ज्ञान' में विश्व के समस्त विषयों का समावेश हो जाता है। केवलज्ञान माने सर्वज्ञता ऐसा कह सकते हैं। केवलज्ञान आत्मा में से ही उत्पन्न होता है। इसमें इन्द्रिय या अन्य किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

केवलज्ञानी मुक्ति को प्राप्त या मुक्त पुरुष होता है। यहाँ केवलज्ञान के साथ ही हमें जैन दर्शन कथित सात तत्वों का स्मरण होता है। इन सात तत्वों के नाम ये हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

जीव अजीव

जैन दर्शनानुसार 'जीव' चेतनादि गुण विशिष्ट है। स्वभावतः शुद्ध जीव अनादि काल से 'अजीव' तत्व से लिप्त है। इस अजीव तत्व से छुटकारा पाने का नाम मुक्ति है।

आश्रव

स्वभावतः शुद्ध जीव जब राग-द्वेष करता है तब जीव में कर्म पुद्गल 'आश्रव' प्राप्त करते हैं—प्रवेश करते हैं। आश्रव के दो भेद हैं—एक शुभ और

दूसरा अशुभ। शुभ आश्रव से जीव स्वर्गादि के सुखों का अधिकारी बनता है और अशुभ आश्रव से इसे नरकादि की यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। आश्रवकाल में जो कर्म पुद्गल जीव में प्रवेश करते हैं उनकी प्रकृति आठ प्रकार की होती है। ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म, वेदनीय कर्म, आयुष कर्म, नाम कर्म, गोत्रकर्म और अन्तरायकर्म।

जो कर्म ज्ञान को ढक लेता है वह ज्ञानावरणीय है। जिससे जीव का स्वाभाविक दर्शनगुण ढक जाता है वह दर्शनावरणीय है। जो कर्म जीव के सम्यक्त्व और चारित्रगुण का घात करता है, जीव को अश्रद्धा और लोभादि में फँसा देता है उसका नाम मोहनीय कर्म है। वेदनीय कर्म के प्रताप से जीव को सुख-दुःख रूपी सामग्री प्राप्त होती है। आयुषकर्म के परिणामस्वरूप जीव मनुष्यादि के आयुष्य को प्राप्त करता है। जीव की गति, जाति, शरीर आदि के साथ नाम कर्म का सम्बन्ध रहता है। उच्च या नीच कर्म मिलने का आधार गोत्र कर्म है। अन्तराय कर्म से दानादि सत्यकार्य में भी विघ्न पड़ता है। इस अष्टविध कर्म के अन्य बहुत से भेद हैं, जिन्हें विस्तार भय से छोड़ दिया गया है।

बंध

स्वभावतः मुक्त जीव उपरोक्त कथनानुसार कर्म पुद्गल के आश्रव से बन्धनग्रस्त रहता है। अजीव कर्मपुद्गल के साथ जीव के मिल जाने का नाम 'बन्ध' है।

संवर

सांसारिक मोह में पड़े हुए जीव में कर्म का आश्रव जिसके द्वारा रुक जाता है उसका नाम 'संवर' है। संवर बन्धनग्रस्त जीव को मुक्ति मार्ग पर ले जाता है। जैन शास्त्रों में कथित तीन गुप्ति, पाँच समिति, दशविध यतिधर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाइस प्रकार के परिषह का जय, पाँच प्रकार का चारित्र और बारह प्रकार का तप संवर साधने के साधन हैं। इन सबके लक्षणों का वर्णन करने का यह स्थान नहीं है।

निर्जरा

कर्म के एकदेशीय क्षय का नाम 'निर्जरा' है। उसके दो भेद हैं—एक सविपाक और दूसरा अविपाक। निर्दिष्ट फलभोग के पश्चात् कर्म का जो स्वाभाविक क्षय होता है उसका नाम सविपाक निर्जरा है; और कर्मभोग से पहले ध्यानादि साधना द्वारा जो कर्मक्षय होता है उसका नाम अविपाक निर्जरा है।

मोक्ष

जीव के समस्त कर्मोंका अन्त होने पर वह 'मोक्ष' को—स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त करता है।

जैन शास्त्र में मोक्ष मार्ग के १४ सोपानों का वर्णन है। इन्हें १४ गुण-स्थानक कहा जाता है। यहाँ तो केवल उनके नाम ही लिखकर सन्तोष करता हूँ : (१) मिथ्यात्व, (२) सासादन, (३) मिश्र, (४) अविरत सम्यक्त्व, (५) देशविरत, (६) प्रमत्तविरत, (७) अप्रमत्तविरत, (८) अपूर्वकरण, (६) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्मसंपराय, (११) उपशांत मोह, (१२) क्षीण मोह, (१३) सयोग केवली, (१४) अयोग केवली। इन सबके लक्षण को छोड़ देता हूँ।

मोक्ष मार्ग

जैनाचार्य सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को—एक साथ तीनों को—मोक्ष मार्ग प्रापक—मोक्ष मार्ग में ले जाने वाला—कहते हैं। इन्हें त्रिरत्न तथा रत्नत्रयी भी कहा जाता है।

सम्यक् दर्शन

जीव, अजीव आदि पूर्वकथित तत्वों का जो विवरण किया उसमें अचल श्रद्धा रखने का नाम 'सम्यक् दर्शन' है।

सम्यक् ज्ञान

संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नामक तीन प्रकार के समारोप अथवा ये तीन प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं। इन समारोपों से रहित भ्रान्ति-रहित ज्ञान का नाम 'सम्यक् ज्ञान' है।

सम्यक् चारित्र

राग-द्वेष रहित होकर पवित्र आचरण का अनुष्ठान करने का नाम 'सम्यक् चारित्र' है।

उपसंहार

जैन विज्ञान का वर्णन करते समय, यहाँ और भी बहुत-सी बातों का उल्लेख करना आवश्यक है। परन्तु श्रोताओं को या वाचकों को अरूचि न हो जाए—वे उकता न जायँ—इस उद्देश्य से मैंने यथाशक्य संक्षेप ही किया है। नहीं तो जैन काव्य, जैन कथा, जैन साहित्य, जैन नीतिग्रन्थ, जैन ज्योतिष, जैन चिकित्सा शास्त्र आदि में इतनी बातें, इतने सिद्धान्त और इतने ऐतिहासिक उपकरण हैं कि उनका उचित विवेचन किए बिना साधारण जन उन्हें समझ ही नहीं सकती। मैंने यहाँ जैन विज्ञान की जो

वह तो बिल्कुल साधारण है ; इसे तो जैन दर्शन का केवल हाडपिंजर कहा जाय तो भी अनुचित न होगा।

प्रमाणाभास क्या है ? वाद विचार कैसा होता है ? फल परीक्षा की पद्धति क्या है ? —इत्यादि बहुत-सी बातें जैन दर्शन में हैं। मैंने यहाँ उनको तो स्पर्श तक नहीं किया, तथापि मुझे विश्वास है कि सुज्ञ पुरूष इतने संक्षिप्त विवेचन से ही इतना तो अवश्य समझ लेंगे कि आधुनिक विज्ञान के अधिकांश मूल सूत्र जैन विज्ञान में है।

जैन विद्या भारतवर्ष की विद्या है। इसके पुनरूद्धार का उत्तरदायित्व भारतवर्ष पर है। भारत की लुप्त विद्या और सभ्यता का पुनरूद्धार करने में बंगाल सदैव अग्रणी रहा है। बंगाल में अद्यावधि बहुत-सी प्राचीन जैन प्रतिमाएँ मिली हैं। बंगाल में ही "सराक" नामक अहिंसाप्रिय जाति की बस्ती होने की खबर मिली है। यद्यपि आजकल यह जाति हिन्दू समाज में मिल गई है, फिर भी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह जाति प्राचीन जैन समाज की—श्रावक समाज की—उत्तराधिकारिणी है। इनके आचार, इनकी लोक कथा और संस्कारों से इस सिद्धान्त को—इस जाति के श्रावक होने की बात को—विशेष पुष्टि मिलती है।

यह भी एक अनुमान होता है कि बंगाल में आज जिसे बर्डवान—वर्द्धमान नगर कहते हैं उसका सम्बन्ध जैन सम्प्रदाय के अन्तिम चौबीसवें तीर्थङ्कर श्री वर्द्धमान स्वामी के नाम के साथ होगा। श्री महावीर स्वामी के नाम पर बंगाल की भूमि में वीरभूमि (वीरभूम जिला) नाम पड़ा हो यह भी स्वाभाविक है। बंगाल में जैन प्रतिमाओं के अतिरिक्त कहीं-कहीं प्राचीन जैन मन्दिर भी पाए जाते हैं। बंगाल के निकटवर्ती मगध में जैन महापुरूषों ने बहुधा अपनी वीर गर्जना की है। यह सब देखते हुए यदि सभ्यताभिमानी बंगाली लोग जैन विद्या के पुनरूद्धार में पर्याप्त मनोयोग न दें तो यह उनके लिए एक आक्षेप की बात होगी।

यहाँ एक और बात भी कह देना चाहता हूँ। महात्मा गाँधीजी के कथनानुसार अहिंसा धर्म के प्रताप से भारतवर्ष का राजनैतिक उद्धार होना चाहिए। इस राजनैतिक अहिंसा का आचरण सर्वप्रथम बंगाल ने ही कर दिखलाया था। इस अहिंसा का सूत्रपात कहाँ से हुआ ? वेद शासित धर्म में अहिंसा की प्रशंसा है—मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता। बौद्ध भी अहिंसा को स्वधर्म के आधार रूप मानते हैं। परन्तु भारतीय जैन समाज अन्यों की भाँति केवल अहिंसा के गीत गाकर ही नहीं बैठ रहता; वह तो मन, वचन, काया से इस धर्म का पालन करता है। और बातों में जैन समाज भले ही पीछे रह गया हो, पर उसकी अहिंसा की आराधना-भक्ति तो प्रशंसनीय है। जैन विद्या के पुनरूद्धार में बंगाली विद्वान यथाशक्ति सहायता देने के लिए तैयार रहें तो भारतीय सभ्यता चमक उठेगी। इस बात का पुनरूच्चारण करके मैं इस निबन्ध को समाप्त करता हूँ।

बंगीय साहित्य परिषद (राधानगर) में यह निबन्ध पढ़ा गया था।

वस्तुपाल-तेजपाल

[गुजरात कहानी]

कुमारपाल की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र अजयपाल देव को गुजरात का सिंहासन प्राप्त हुआ। अजयपाल देव अपने पिता की प्रकृति के पूर्णतः विपरीत थे। सिंहासनारूढ़ होते ही उन्होंने जैन मन्दिरों को ध्वंस एवं विश्वस्त मन्त्रियों की हत्या करवाना प्रारम्भ कर दिया। अन्ततः वयजल नामक एक प्रतिहारी द्वारा मारे गए। उनका राज्यकाल था मात्र तीन वर्ष।

अजयपाल देव के पश्चात् दो वर्ष मूलराज ने राज्य किया। मूलराज के पश्चात् किया भीम ने। भीम का राज्यकाल ६३ वर्ष तक स्थायी होने पर भी मालव के आक्रमण से छत्र-भंग हो गया। इसी छत्र भंग राज्य पर राजत्व किया व्याघ्रपल्लीय नाम से प्रसिद्ध आनाक पुत्र लवन प्रसाद ने। आनाक कुमारपाल का मौसेरा भाई था।

जिस समय कुमारपाल जीवित थे एक दिन द्विप्रहर में जबकि आनाक कुमारपाल के पास ही बैठा था उनके भृत्य ने उन्हें पुकार कर बाहर बुलवाया और उनको पुत्र जन्म की सूचना दी। जब आनाक कुमारपाल के पास पुनः लौटा तो उन्होंने पूछा कि तुम्हें पुकारने वाला कौन था ? सब कुछ सुनकर कुमारपाल बोले—'तुम्हारा भृत्य वेत्रधारिणियों की बाधा अतिक्रम कर तुम्हें पुत्र-जन्म का संवाद देने चला आया इससे लगता है तुम्हारा पुत्र अपने पुण्य के प्रभाव से गुजरात का राजा होगा। और तुम्हारा भृत्य तुम्हें यहाँ से बाहर बुलाकर सूचित किया अतः उसकी राजधानी यहाँ नहीं अन्यत्र होगी।'

हुआ भी वैसा ही। भीम के पश्चात् आनाक-पुत्र लवन ही गुजरात के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। इसी लवन प्रसाद का पुत्र था वीर धवल।

वीर धवल जब छोटा था, उसकी माँ मदन देवी अपनी बहन की मृत्यु का संवाद पाकर और यह अवगत कर कि बहनोई देवराज कपर्दकहीन हो गए हैं पति की अनुमति लेकर उससे मिलने गयीं। किन्तु देवराज ने मदन देवी के शुभ लक्षण एवं सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसे अपनी पत्नी बना लिया। इस पर क्रुद्ध होकर लवन प्रसाद गुप्तरूप से देवराज के घर में प्रवेश कर उसकी हत्या के सुयोग की प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु, वीर धवल के प्रति देवराज का स्नेह देखकर वह मुग्ध हो गया एवं उसे क्षमाकर अपने गृह लौट आया। बड़े होने पर जब वीर धवल को यह सब ज्ञात हुआ तो वह देवराज का घर

त्याग कर पिता के पास चला आया। लवन प्रसाद ने वीर धवल को कुछ भूमि प्रदान की और कुछ भूमि उसने स्वयं जयकर चाहड़ नामक राज पुरोहित की सहायता से राज्य परिचालना करने लगा।

एक दिन चाहड़ का परिचय प्रागवट वंशीय पत्तन निवासी वस्तुपाल-तेजपाल के साथ हुआ। वस्तुपाल-तेजपाल की विलक्षण बुद्धि से प्रभावित होकर चाहड़ ने वीर धवल को इन्हें प्रधान मन्त्री एवं सेनापति के पद पर नियुक्त करने का अनुरोध किया। वीर धवल ने उन्हें तदनुसार अभ्यर्थित किया। उन्होंने भी वीर धवल को पत्नी सहित अपने गृह आने का आमन्त्रण दिया। वीर धवल जब सपत्नी वहाँ पहुँचा तो तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी ने रानी जयतलदेवी को कर्पूर निर्मित अपने कर्णफूल और मुक्तामणि जड़ित कर्पूरमय सुवर्णहार उपहार दिया। वीर धवल ने इसका निषेध करते हुए वस्तुपाल-तेजपाल को राज्यभार सौंपकर कहा—'तुम्हारे पास जो धन है वह तो मैं कभी कुपित होने पर भी ग्रहण नहीं करूँगा यह तुम्हें वचन देता हूँ। तुमलोग मेरे राज्य शासन का भार ग्रहण करो।'

इस प्रकार अनुरूद्ध होकर वस्तुपाल-तेजपाल ने शासन भार ग्रहण किया। अतः वस्तुपाल महामात्य और तेजपाल सेनापति नियुक्त हुए। वस्तुपाल की सुव्यवस्था ने कुछ दिनों में सब कुछ शृंखलित कर दिया। मात्र राज्य के भीतर ही शान्ति स्थापित नहीं हुई, उन्होंने कई युद्धों में विजय प्राप्त कर राज्य की सीमा में भी अभिवृद्धि की। फलतः उस वृहत् राज्य पर वीर धवल और उसका पिता लवन प्रसाद एक साथ राज्य करने लगे।

एक दिन तेजपाल के पास आकर उनका एक कर्मचारी मुंजाल बोला—'प्रभु, आप बासी भोजन करते हैं या ताजा?' तेजपाल सहसा उस कथन का अभिप्राय समझ नहीं पाए। सोचा इसका माथा ठीक नहीं है। किन्तु, जब वह बार-बार यही प्रश्न पूछने लगा तब वे बोले—'मैं इसका तात्पर्य नहीं समझा—समझा कर कहो।' उसने प्रत्युत्तर दिया—'इसका तात्पर्य यह है कि *आप जिस वैभव का उपभोग कर रहे हैं वह पूर्व जन्म कृत पुण्य का फल है या* इस जन्म के पुण्य का? इसके आगे मैं और कुछ नहीं जानता। मैंने तो आपके गुरुदेव का संदेश आप तक पहुँचाया है।' यह सुनते ही तेजपाल अपने कुलगुरु विजयसेन सूरि के पास गए एवं उनके उपदेश से धर्म कृत्य करना प्रारम्भ किया। उन्होंने शत्रुञ्जय और गिरनार तीर्थ का संघ निकाला। स्थान-स्थान पर मन्दिरों एवं उपाश्रयों का निर्माण करवाया। बहुत से भग्न मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया। आबू पहाड़ पर भी भगवान नेमिनाथ के भग्न मन्दिर

का निर्माण करवाया। इनके बड़े भाई लूनिग ने अपनी मृत्यु के समय अर्बुद पहाड़ की बिमल वसही में एक देवकुलिका बनाने को उन्हें कहा था। किन्तु, वहाँ के पुजारियों ने उन्हें विमल वसही पर भूमि नहीं दी। अतः इन्होंने विमल वसही के निकट नवीन भूमि खरीद कर वहाँ विश्व-विख्यात लूनिग वसही मन्दिर का निर्माण करवाया। इस मन्दिर के गुण-दोष का निर्णय करने के लिए तेजपाल ने जवालिपुर से यशोवीर को बुलवाया। मन्दिर का निरीक्षण कर वे स्थपति शोभनदेव से बोले—'रंग-मण्डप में शालभंजिका रूप मिथुन अनुचित और वास्तु शास्त्र के विपरीत है। भीतरी गृह के प्रवेश द्वार पर सिंह तोरण देवताओं की विशिष्ट पूजा का विनाशक है। और पूर्व पुरूषों की मूर्तियुक्त हाथियों का मन्दिर के सम्मुख होना निर्माता के भविष्य विनाश की सूचक है।' ऐसा कहकर वे जिस प्रकार आए थे उसी प्रकार चले गए।

वस्तुपाल-तेजपाल के दान की जिस प्रकार तुलना नहीं की जा सकती उसी प्रकार विद्वानों के सम्मान की भी। उनके दान के विषय में एक पद यहाँ दे रहे हैं।

पण्डितगण उनकी सभा में एक श्लोक के तीन पद बार-बार बोले जिसका अर्थ है—कर्ण ने दान में चर्म दिया, शिवि ने माँस, जीमूतवाहन ने प्राण और दधीचि ने अस्थि। तब कवि जयदेव ने उसकी पूर्ति इस प्रकार की—और वस्तुपाल ने दिया वसु अर्थात् धन।

इस पाद पूर्ति के लिए जयदेव ने चार हजार मुद्राएँ प्राप्त कीं।

तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी भी विदुषी, दानशीला और महियषी महिला थीं। आबू मन्दिर का निर्माण कार्य जब शिथिल हो गया था तब उनका उत्साह, आर्थिक सहायता और सहानुभूति ने इस कार्य में प्रगति उत्पन्न कर दी थी। उन्होंने कारीगरों के भोजन के लिए अपने व्यय से भोजनशाला खुलवायी और सर्दी के समय शरीर गरम रखने के लिए एक-एक सिगड़ी दी। इसके अतिरिक्त खुदाई कार्य को सूक्ष्म करने के लिए उन्होंने घोषणा करवायी कि जो जिस परिमाण में पत्थर चूर्ण बाहर निकालेगा उसे उसी परिमाण में सोना दिया जाएगा। आबू मन्दिर अपनी सूक्ष्म कोरनी के लिए जो विख्यात है उसके पीछे है इसी महियषी महिला का संवेदनशील मन। किसी जैनाचार्य ने अनुपमा देवी के विषय में लिखा है—

लक्ष्मी चंचला, शिवा कोपना, शचि सौत. दोष से दूषिता हैं और गंगा निम्नगामिनी एवं सरस्वती वाचाल है। किन्तु अनुपमा अनुपमा है।
मेरुतुंगाचार्य की 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के आधार से।

श्रीपाल

[पूर्वानुवृत्ति]

तृतीय दृश्य

[राजा प्रजापाल का कक्ष। प्रजापाल उत्तेजित से टहल रहे हैं। उसी समय द्वार रक्षक का प्रवेश]

द्वार रक्षक : महाराज, राजद्वार पर कोढ़ियों के प्रतिनिधि अपेक्षा कर रहे हैं। वे आपसे मिलना चाहते हैं।

प्रजापाल : मुझसे ? क्या चाहते हैं वे ? उन्हें कोषाध्यक्ष के पास ले जाओ। उससे अर्थ दिलवाकर विदा करो।

द्वार रक्षक : मैंने उन्हें कोषाध्यक्ष से मिलने को कहा था। किन्तु वे कहते हैं कि वे अर्थ के लिए नहीं अन्य किसी कार्य के लिए आए हैं।

प्रजापाल : अन्य किसी कार्य के लिए ? अच्छा तो ले आओ यहाँ।

[द्वार रक्षक चला जाता है। कुष्ठ रोगियों के दो-तीन प्रतिनिधि प्रवेश करते हैं]

प्रथम प्रतिनिधि : महाराज की जय ! महाराज, बड़ी आशाएँ लेकर आपके पास आए हैं।

प्रजापाल : क्या चाहते हो तुमलोग ? अर्थ ? तो कोषाध्यक्ष से क्यों नहीं मिले ?

प्रथम प्रतिनिधि : नहीं महाराज, हम अर्थ के प्रार्थी नहीं हैं। अर्थ तो हमें मिल ही जाता है। जो कुछ चाहते हैं वह यदि अभय करें तो कहें।

प्रजापाल : बोलो, निर्भय होकर बोलो। प्रजापाल सभी की इच्छा पूर्ण करता है।

प्रथम प्रतिनिधि : तभी तो आपके पास आए हैं महाराज ! हमारे राजा हैं उम्बर राणा। उनके लिए छत्र चामरादि समस्त वस्तुएँ तो हमने एकत्रित कर ली है। रानी अभी तक नहीं

खोज पाए । रानी के लिये ही हम आपके पास आए हैं । उनके लिये यदि कोई सुशीला, सरल स्वभावी, धर्म-परायण कन्या की व्यवस्था आप करवा दें तो आपके चिर ऋणी रहेंगे ।

प्रजापाल : तुम्हारे राजा ? उन्हें कहाँ से पाया ?

प्रथम प्रतिनिधि : महाराज, भाग्य ही उन्हें हमारे मध्य ले आया है ?

प्रजापाल : भाग्य ?

प्रथम प्रतिनिधि : हाँ महाराज ! तभी तो हम उनके लिए उपयुक्त रानी की खोज में हैं ।

प्रजापाल : अब तुम्हें और अधिक नहीं खोजना पड़ेगा । मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा । तुम्हारे राजा को मेरे सम्मुख उपस्थित करो । मैं अपनी कन्या का विवाह उससे करूँगा ।

प्रथम प्रतिनिधि : [विस्मय से] महाराज !

प्रजापाल : क्यों ? विश्वास नहीं हो रहा है ?

प्रथम प्रतिनिधि : हाँ महाराज, यह तो असम्भव है ।

प्रजापाल : प्रजापाल ही एक ऐसा है जो असम्भव को भी सम्भव बना देता है । जाओ, वृथा समय नष्ट न करो । तुम्हारे राजा को यहाँ ले आओ ।

[कुष्ठियों के प्रतिनिधि चले जाते हैं । राजा द्वारपालिका को बुलाते हैं । वह आती है]

प्रजापाल : मैना सुन्दरी को यहाँ बुला लाओ । हंसपदिका को विवाह की तैयारी करने को कहो ।

[द्वारपालिका चली जाती है । राजा इधर-उधर तेजी से विचरण करते हुए]

प्रजापाल : हूँ, भाग्य ? अब मुझे हृदय को कठोर बनाना होगा । ठीक है, तब भाग्य ही उसे यहाँ खींचकर लाया है । अब तो मैं उम्बर के साथ ही मैना का विवाह करूँगा । इससे मेरी कीर्ति बढ़ेगी और उसे भी भाग्य परीक्षा का सुअवसर मिल जाएगा ।

[मैना सुन्दरी आकर पिता को प्रणाम करती है]

प्रजापाल : मैना, तेरा भाग्य आज जिसे यहाँ ले आया है मैंने उसी के साथ तेरा विवाह करना निश्चित किया है ।

मैना सुन्दरी : मेरा भाग्य ही यदि उन्हें यहाँ ले आया है तो वे निश्चय ही मेरे पति हैं ।

प्रजापाल : किन्तु जानती है वह पति कौन है ?

मैना सुन्दरी : जानने की आवश्यकता ही क्या है ? पिताजी, वे जो कोई भी हों, जब आप उनके साथ मेरा विवाह कर रहे हैं तो प्रशान्त मन से मैं उन्हें वरण करूँगी ।

प्रजापाल : प्रशान्त मन से ? तब सुन ! वह है कोढ़ियों का राजा उम्बर । वह स्वयं भी कोढ़ी है । क्यों, चुपचाप क्यों खड़ी है ? देह सिहर उठी है क्या ? मन में घृणा के कीड़े कुलबुला रहे हैं न ? राजा प्रजापाल भाग्य को उलट सकता है । अब भी यदि तू चाहती है तो बोल—मैं इस सम्बन्ध को तोड़ सकता हूँ ।

मैना सुन्दरी : नहीं पिताजी ! आप ऐसा नहीं कर सकते । मेरे भाग्य में यदि यही विवाह लिखा है तो आप उसे अन्यथा नहीं कर सकते ।

प्रजापाल : अभी भी तू अपना मिथ्या मतवाद नहीं छोड़ पा रही है ? [दूर से कोलाहल की आवाज आती है] सुन, यह कोढ़ियों का ही आनन्द कलरव है । वे अपने राजा को लिए चले आ रहे हैं । मैंने उन्हें यह प्रतिश्रुति दी है—मैं तुझे उनके राजा को सम्प्रदान करूँगा ।

मैना सुन्दरी : अपनी प्रतिश्रुति पालन कीजिए पिताजी ।

प्रजापाल : अच्छा ! तो तू चाहती है कि एक कोढ़ी के साथ तेरा विवाह कर दूँ ।

[एक ओर से उम्बर राणा को लिए कोढ़ियों का प्रवेश दूसरी ओर से मैना सुन्दरी की माँ रूप सुन्दरी एवं मन्त्री आदियों का प्रवेश]

रूप सुन्दरी : महाराज, यह क्या सुन रही हूँ मैं ? एक कोढ़ी के साथ आप मेरी कन्या का विवाह कर रहे हैं ? माँ की अनुमति के बिना विवाह नहीं हो सकता।

प्रजापाल : अवश्य ही हो सकता है। कारण सन्तान के विवाह का अधिकार माता को नहीं पिता को होता है।

मन्त्री : महाराज, किन्तु यह अधर्म है।

प्रजापाल : और यह धर्म है कि कन्या भरी सभा में पिता का अपमान करे ?

मन्त्री : लेकिन, वह कन्या तो आपकी ही है। सन्तान के सुख-दुःख को सोचकर बहुत कुछ सहन करना पड़ता है।

प्रजापाल : वह जानता हूँ। किन्तु, इसमें तो कन्या का भी अभिमत है। यदि विश्वास न हो तो उससे ही पूछ लो न ?

[मन्त्री मैना सुन्दरी की ओर देखते हैं। सभी की दृष्टि मैना सुन्दरी पर निबद्ध है। हंसपदिका आती है]

मैना सुन्दरी : पिताजी यदि उनसे मेरा विवाह करना चाहते हैं तो यह मुझे सहर्ष स्वीकार है। इसमें न तो मुझे कोई कष्ट है न कोई संकोच। पिताजी की आज्ञा का पालन करने के लिए मैं सदैव प्रस्तुत हूँ।

उम्बर राणा : नहीं महाराज, यह अनमेल विवाह किसी प्रकार उचित नहीं है। यह तो कौवे के गले में रत्नहार पहनाने जैसा है। आप यह कन्या मुझे मत दान करिए। इससे विवाह कर इसका जीवन नष्ट करना भयंकर पाप है।

मन्त्री : तुम ठीक कहते हो उम्बर राणा। यह तुम्हारे हृदय की विशालता का ही परिचायक है।

उम्बर राणा : महाराज !

प्रजापाल : इसमें मेरा क्या दोष है उम्बर राणा ? मेरी कन्या का भाग्य पर अगाध विश्वास है। मैंने उसे सुख नहीं दिया है। जो कुछ सुख उसे मिला है वह भाग्य ने दिया है। यदि यह सच है तो वह तुम्हारे साथ भी सुखी रहेगी। मैं राजा हूँ। उसके

इस दुराग्रह के लिए मैं उसे दण्ड दे रहा हूँ। मैं देखना चाहता हूँ उसका भाग्य उसे कैसे सुखी बनाता है। हंसपदिका! हमलोगों को विवाह मण्डप की ओर ले चल।

हंसपदिका : इस ओर आइए महाराज।

[हंसपदिका का अनुसरण करते हुए राजा, मैना सुन्दरी, उम्बर राणा और कोढ़ियों के दल का प्रस्थान]

प्रथम परिषद् : अन्याय, अन्याय, घोर अन्याय—

द्वितीय परिषद् : महाराज का हृदय तो पाषाण से भी कठोर है।

प्रथम परिषद् : और वह उम्बर राणा! कितना महान् था उसका हृदय! शरीर से तो वह भले ही व्याधिग्रस्त हो पर उसका हृदय है सौ-सौ चन्द्रबिम्बों से भी अधिक निर्मल।

प्रथम परिषद् : महाराज का यह कार्य एकदम अनुचित है।

द्वितीय परिषद् : यह तो ठीक है। पर, हम क्या कर सकते हैं?

चतुर्थ दृश्य

[कोढ़ियों के शिविर का एक अंश। मैना और उम्बर राणा]

उम्बर राणा : मैना!

मैना सुन्दरी : स्वामी!

उम्बर राणा : वासर शय्या की इस शुभ रात्रि में मैं तुमसे क्या कहूँ कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ। जितना ही तुम्हें देखता हूँ उतना ही तुम्हारी क्षमाशीलता एवं हार्दिक सौन्दर्य से अभिभूत हुआ जा रहा हूँ। तुम स्त्रियों में एक रत्न हो। किन्तु, खेद है मैं इस रत्न को धारण करने योग्य नहीं हूँ। तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें मुझे सौंपकर बहुत बुरा कार्य किया है। किन्तु, मैं तुम्हारे पिताजी की भाँति अविवेकी नहीं हूँ। यद्यपि हमारा विवाह हो चुका है फिर भी तुमसे कहता हूँ इस पर एक बार और विचार करो। अभी भी यदि तुम चाहो तो मुझसे पृथक जीवन-यापन कर सकती हो। मैं तुम्हें सहर्ष अनुमति देता हूँ।

मैना सुन्दरी : ऐसा न कहिए स्वामी! यह सब तो सुनना भी पाप है।

उम्बर राणा : मैं ठीक कहता हूँ मैना। कहाँ तुम्हारी कुसुम-कोमल सुकुमार देह और कहाँ मेरा रोग जर्जरित शरीर। मुझे स्पर्श करते ही यह रोग तुम्हारी देह में भी संक्रमित हो जाएगा यह सोचने मात्र से सिहर उठता हूँ। एक बार और सोचो मैना। इसमें लज्जा और संकोच की कोई बात ही नहीं है।

मैना सुन्दरी : ऐसी अनुचित बातें कहकर मुझे दुःखित मत कीजिए स्वामी! अब मुझे आपसे दूर कोई नहीं कर सकता।

उम्बर राणा : नहीं मैना, यदि मैं अपना हृदय तुम्हें दिखा पाता तो तुम देखती कि इस सामान्य से परिचय ही में मैं तुम्हें कितना अगाध प्यार करने लगा हूँ। प्यार करने लगा हूँ तभी तो कहता हूँ कि तुम्हारा सुन्दर शरीर रोग जर्जरित हो जाए यह मैं नहीं चाहता। अरे! क्या हुआ मैना? तुम्हारी आँखों में आँसू?

मैना सुन्दरी : कुछ नहीं है वह। किन्तु, पिताजी ने जब आपके हाथों मुझे सौंप दिया है तो अब आप ही मेरे सर्वस्व हैं। जिस मन्त्र का उच्चारण कर आपने मुझे ग्रहण किया है उस मन्त्र को स्मरण करिए। पति-पत्नी का सम्बन्ध दूर रहने के लिए नहीं होता स्वामी! आप अपने मन से इन सभी चिन्ताओं को दूर कर दीजिए। मैं सदैव आपके साथ ही रहूँगी, आपकी सेवा करूँगी। सुख-दुःख, रोग-शोक ये सब तो भाग्य के निर्बन्ध हैं। उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता। फिर आप क्यों अभी से यह सब सोचने लगे। मेरी आपसे यही याचना है आप मुझे अपनी चरण सेवा से वंचित न करें।

उम्बर राणा : मैना, तुम सचमुच ही सुन्दर हो। अपरूप हो। बहुत बड़े सौभाग्य से मैंने तुम्हें प्राप्त किया है। अपने यौवन स्वप्न में अनेक बार जिस मुख को देखा था लगता है वह मुख तुम्हारा ही था। तुम्हीं हो प्रभात का वह शुक्रतारा। किन्तु·······

मैना सुन्दरी : स्वामी! अब आप आगे कुछ मत सोचिए। भाग्य अप्रसन्न होने पर स्वस्थ मनुष्य भी रोगी हो जाता है प्रसन्न होने पर रोगी स्वस्थ। यदि मेरे भाग्य में सुख होगा तो आप भी

स्वस्थ हो जायेंगे। कल मैं आपको जिनालय ले जाऊँगी। वहाँ देव दर्शन करेंगे और उसके पार्श्व में ही मेरे गुरुदेव अवस्थित हैं उनका भी दर्शन करेंगे। क्यों चलेंगे तो ?

उम्बर राणा : निश्चय जाऊँगा मैना। तुम्हारी इच्छा ही तो मेरी इच्छा है।

पंचम दृश्य

[उपाश्रय : धर्मघोषसूरि उपदेश दे रहे हैं। कुछ श्रावक-श्राविकाएँ बैठी हैं]

धर्मघोष सूरि : अनेक जन्मों के पश्चात् जीव मनुष्य देह प्राप्त करता है। अतः इसे सहज ही नष्ट मत करो। इसका सदुपयोग करो। जो इसे इस भाँति नष्ट करते हैं उन्हें पश्चाताप ही करना पड़ता है। अतः निद्रा और आलस्य का परित्याग कर धर्म कार्य में प्रवृत्त होओ।

[मैना उम्बर राणा के साथ आती है]

धर्मघोष सूरि : अरे मैना तुम ? फिर आज अकेली कैसे ? तुम तो हमेशा दास-दासियों से परिवृत होकर ही आती थी ?

मैना सुन्दरी : मेरा विवाह हो गया है महाराज।

धर्मघोष सूरि : तुम्हारा विवाह हो गया है और मुझे ज्ञात भी नहीं !

प्रथम श्रावक : कैसे जानेंगे आप ? राजकुमारी का विवाह कोई आनन्दोत्सव से थोड़े ही हुआ है ? वहाँ कोई आमन्त्रित नहीं हुआ था। राजा ने गर्व के साथ कहा था मैं निर्धन को धनी और धनी को निर्धन बना सकता हूँ। राजकुमारी इससे सहमत नहीं हुईं। इन्होंने कहा—ऐसा आप नहीं कर सकते। संसार में कर्मानुसार ही सब सुखी-दुःखी होते हैं।

धर्मघोष सूरि : ठीक ही तो कहा था राजकुमारी ने।

प्रथम श्रावक : हाँ गुरुदेव ! किन्तु राजा तो यह सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो उठे। बोले—तुझे जो खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया वह मैंने नहीं किया ? राजकुमारी ने प्रत्युत्तर दिया अवश्य ही आपने मुझे खिला-पिलाकर बड़ा किया है। किन्तु आपके घर

मेरा जन्म मेरा भाग्यवश ही हुआ है। अब तो राजा और क्रोधित हो गए। बोले—देखता हूँ भाग्य तुझे क्या देता है, अतः एक अज्ञात कुलशील कुष्ठ रोगी से इसका विवाह कर दिया।

द्वितीय श्रावक : अन्याय, अन्याय! घोर अन्याय!

प्रथम श्रावक : अन्याय? अरे जो भी यह बात सुन रहा है छीः छीः कर रहा है। आखिर तो वे इसके पिता थे। अपनी सन्तान के प्रति कैसे वे इतने कठोर हो पाए?

धर्मघोष सूरि : कर्म की गति बहुत गहन है। [मैना की ओर देखकर] यही हैं तेरे पति?

मैना सुन्दरी : हाँ गुरुदेव। किन्तु मुझे इसके लिए कोई दुःख नहीं है। कुष्ठरोगाक्रान्त पति ही यदि मेरे भाग्य में लिखा था तो वह अन्यथा कैसे होता। फिर सुन्दर युवक से विवाह हो जाने से ही क्या होता है? भाग्य विपरीत होने पर वह भी तो कुष्ठरोगाक्रान्त हो सकता है। इस बात का तो मुझे कोई दुःख ही नहीं है। दुःख तो यह है कि लोग अर्हत् धर्म की निन्दा कर रहे हैं। कहते हैं अर्हत् धर्मावलम्बियों के सान्निध्य ने ही मुझे इतना अविनीत बना दिया है।

धर्मघोष सूरि : राजकुमारी! उसके लिए भी दुःख मत करो। संसार में विभिन्न प्रकृति के मनुष्य हैं। तुम किस-किस का मुंह बन्द करोगी? अतः तुम उन बातों की उपेक्षा करो। किन्तु, मैं तो देख रहा हूँ सौभाग्यवश ही तुमने इस पुरुष रत्न को प्राप्त किया है। भविष्य में यह महान् प्रभावशाली राजा होगा। जब तक नभ में सूर्य-चन्द्र उदित होते रहेंगे तब तक इसकी कीर्ति भी जीवित रहेगी।

मैना सुन्दरी : गुरुदेव! आपके कथन पर मेरा पूर्ण विश्वास है। आप जो कुछ कह रहे हैं वह अवश्य ही एक दिन सत्य होगा। किन्तु, कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे ये रोग मुक्त हो सकें।

धर्मघोष सूरि : राजकुमारी ! यद्यपि ऐहिक विषयों की उन्नति के लिए कुछ बताना मुनियों का आचार नहीं है फिर भी तुझे कुछ बतलाऊँगा। कारण इसका पुण्य प्रभाव ही मुझे कुछ बताने को उद्‌बुद्ध कर रहा है। इसके द्वारा जिन शासन का अभ्युदय होगा। अतः मैं तुम्हें सिद्ध चक्र रूप एक यन्त्र दूँगा। इस यन्त्र की उपासना कर इसका प्रक्षालित जल तुम तुम्हारे पति पर छिड़क देना। उससे यह रोग-मुक्त हो जाएगा।

मैना सुन्दरी : गुरुदेव ! आपकी इस करुणा ने मुझे और भी कुछ याचना करने को साहसी बना दिया है। केवल मेरे पति ही नहीं अन्य सात सौ लोग भी जो कुष्ठरोगाक्रान्त हैं वे भी इस जल के प्रभाव से रोग मुक्त हो जाएँ।

धर्मघोष सूरि : अवश्य हो जाएँगे, अवश्य।

[क्रमशः

हिन्दी जैन साहित्य

[पूर्वानुवृत्ति]

—नेमिचन्द जैन

कवि ने मंगलाचरण के उपरान्त सम्यग्-दृष्टि की प्रशंसा, आत्मा की अनेकता, मन की विचित्र दौड़ एवं सप्त व्यसनों का सच्चा स्वरूप प्रतिपादित करने के साथ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों का काव्य की शैली में निरूपण किया है। आत्मा की अनुपम आभा का कितना सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

जो अपनी दुति आप विराजत, हैं परधान पदारथ नामी।
चेतन एक सदा निकलंक, महासुख सागर को विसरामी॥
जीव-अजीव जिते जग में, तिनको गुन ज्ञायक अन्तरजामी।
जो शिवरूप बसै शिवथानक, ताहि विलोकन मैं शिवगामी॥

अज्ञानी जीव भ्रम के कारण अपने स्वरूप को विस्मृत कर संसार में जन्म-मरण के कष्ट उठा रहा है। कवि कहता है कि काया की चित्रशाला में कर्म का पलंग बिछाया गया है, उस पर माया की सेज सजाकर मिथ्या कल्पना का चादर डाला गया है। इस शय्या पर अचेतन की नींद में चेतन सोता है। मोह की मरोड़, नेत्रों का बन्द करना—झपकी लेना है। कर्म के उदय का बल ही श्वाँस का घोर शब्द है और विषय सुख की दौड़ ही स्वप्न है। इस प्रकार तीनों कालों में अज्ञान की निद्रा में मग्न यह आत्मा भ्रमजाल में ही दौड़ती है, पर इसे अपना रूप प्राप्त नहीं होता। कवि इसी स्वरूप का विश्लेषण करता हुआ कहता है:

काया की चित्रसारी में करम परजंक भारी, माया की सँवारी सेज चादर कलपना।
शेन करे चेतन अचेतनता नींद लिए, मोह की मरोर यहै लोचन का ढपना॥
उदै बल जोर यहै श्वास को शबद घोर, विष सुखकारी जाकी दौर यहै सपना।
ऐसी मूढ़ दशा में मगन रहे तिहूँकाल, धावे भ्रमजाल में न पावे रूप अपना॥

इसी प्रकार कवि ने भेद-विज्ञान, आत्मानुभूति, आत्मतत्व, सहजानुभूति कर्म संसर्ग से होने वाली आत्मा की विभिन्न प्रकार की लीलाएँ, निश्चय और व्यवहार के स्वरूप, उनके दृष्टिकोण, आत्मा का कर्तृत्व, अकर्तृत्व,

भोक्तृत्व प्रभृति का रूपात्मक काव्य शैली में प्रतिपादन किया है। इन प्रसंगों में प्रयुक्त उपमान बड़े ही सरस और नवीन हैं। रूपकों के सहारे आत्मतत्व का विश्लेषण काव्य के स्वरूप को चमत्कृत ही नहीं करता, बल्कि उसे रस-ग्राह्य बनाता है। यहाँ एक चित्र का वर्णन करना आवश्यक है। कवि कर्म संजोगी आत्मा की अनेकरूपता का चित्रण करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार नदी की एक ही धारा में नाना स्रोतों का जल आकर मिलता है, तथा जिस स्थान पर पाषाण शिलाएँ रहती हैं, वहाँ धारा मुड़कर जाती है, जहाँ कंकड़ रहते हैं, वहाँ झाग देती हुई आगे बढ़ती है, जहाँ हवा का जोर अधिक रहता है, वहाँ चंचल तरंगें उठती हैं और जहाँ की भूमि नीची होती है, वहाँ भँवरें पड़ती हैं। इसी प्रकार आत्मा में पुद्‌गल अचेतन के अनन्त रसों के कारण अनेक प्रकार के विभाव उत्पन्न होते हैं। आत्मा की विभाव पर्याय जन्म लीलाएँ नाटक के पात्रों की लीलाओं से कम नहीं होतीं। संसार रूपी रंग-स्थली पर आत्मा नट बनकर नाना तरह की लीलाएँ किया करती हैं। नायक आत्मा है और प्रति-नायक पुद्‌गल—जड़ पदार्थ। आत्मा की इसी अनेकरूपता का कितना स्वाभाविक चित्रण किया है—

जैसे महीमण्डल में नदी का प्रवाह एक, ताही में अनेक भाँति नीर की ढरनि है।
पाथर के जोर तहाँ धार की मरोर होत, कांकर की खानि तहाँ झाग की झरनि है ॥
पौन की झकोर तहाँ चंचल तरंग उठे, भूमि की निचानि तहाँ भौंर की परनि है।
तैसो एक आत्मा अनंत रस पुद्‌गल, दोहू के संयोग में विभाव की भरनि है ॥

'नाटक समयसार' की भाषा सरस, मधुर और प्रसादगुण पूर्ण है। शब्द चयन, वाक्य विन्यास और पदावलियों के संगठन में सतर्कता और सार्थकता का ध्यान सर्वत्र रखा गया है।

'अर्द्धकथानक'[११]—इसमें कवि ने अपनी आत्मकथा लिखी है। वि० सं० १६९८ तक की सभी घटनाएँ दी गयी हैं। यह हिन्दी में लिखी गयी सबसे पहली आत्मकथा है। यह आत्मकथा काव्य "मध्यदेश की बोली" में लिखा गया है। यह समूची आत्मकथा इतनी रोचक है और ऐतिहासिक निबन्ध की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण है कि इसमें हिन्दी साहित्य की अनेक नयी बातों पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही १७वीं शती की राजनीतिक और सामाजिक अनेक घटनाओं का जीता-जागता चित्र उपस्थित हो जाता है। इस आत्मकथा

[११] अर्द्ध कथानक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से प्रकाशित है।

में कवि ने अपना ५५ वर्ष का चरित्र स्पष्टता और सत्यतापूर्वक अंकित किया है।

'बनारसी विलास'—इसमें महाकवि बनारसी दास की ५७ छोटी-छोटी रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसका संकलन सम्वत् १७०१ में पं० जगजीवन ने किया है। इस संकलन में 'तेरह काठिया', 'भवसिन्धु-चतुर्दशी', 'अध्यात्म हिंडोलना', 'सूक्तिमुक्तावली', 'ज्ञान पच्चीसी', 'अध्यात्म बत्तीसी', 'कर्म छत्तीसी', 'मोक्षपैडो', 'शिव पच्चीसी' और 'ज्ञानबावनी' आदि प्रधान है।

'तेरह काठिया' में कवि कहता है कि जिस प्रकार लुटेरे, बदमाश, चोर आदि देश में उपद्रव मचाते हैं, उसी प्रकार तेरह काठिया आत्मा में उपद्रव विकृति उत्पन्न करते हैं। जुआ, आलस, शोक, भय, कुकथा, कौतुक, कोप, कृपण बुद्धि, अज्ञानता, भ्रम, निन्दा, मद और मोह ये तेरह आत्मा में विकार उत्पन्न करते हैं। विभाव परिणति के कारण शुद्ध बुद्ध और निरंजन आत्मतत्व में पर पदार्थों के संयोग से विकृति उत्पन्न हो जाती है। उपर्युक्त तेरह धूर्त आत्मा के निजी धन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को चुराते हैं।

'भवसिन्धु चतुर्दशी' एक सरस हृदयग्राहक रचना है। इसमें संसार की विडम्बनाओं से पृथक रहने की ओर संकेत करते हुए परमात्म चिन्तन अथवा अन्वेषण की ओर प्रवृत्त होने की बात कही है। इसमें विभिन्न रूपकों द्वारा संसार के स्वरूप का विश्लेषण किया है।

हिंडोले का रूपक देकर आत्मानुभूति की सरस और सुन्दर अभिव्यंजना इस 'अध्यात्म हिंडोलना' में की गयी है। चेतन आत्मा स्वाभाविक सुख के हिंडोले पर अवगुणों के साथ क्रीड़ा करती रहती है। रूपक अत्यन्त सजीव और हृदयग्राही है।

'सूक्तिमुक्तावली' के पद्य भी सुन्दर और उपदेशप्रद हैं। यह संस्कृत भाषा में लिखी गयी सोमप्रभ की 'सूक्तिमुक्तावली' के आधार पर लिखित है।

हमारे इस युग के द्वितीय बड़े कवि भैया भगवती दास हैं। ये आगरा के निवासी ओसवाल जैन थे। इनका गोत्र कटारिया था। इनके पिता का नाम लालजी और पितामह का नाम दशरथ साहू था। इनके जन्म संवत् एवं मृत्यु संवत् के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं है! हाँ इनकी रचनाओं में सम्वत् १७३१ से १७५५ तक का उल्लेख मिलता है। वि० सं० १७११

में हीराचन्द ने 'पंचास्तिकाय' का अनुवाद किया था, इसमें आगरा के भगवती दास का भी उल्लेख किया है। संभवतः ये ही भैया भगवतीदास रहे होंगे। इन्होंने कविता में अपना उल्लेख भैया, भविक और दास किशोर उपनामों से किया है। इनकी समस्त कविताओं का संग्रह 'ब्रह्मविलास' में प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त 'लघु सीतासतु' नामक एक सुन्दर खण्डकाव्य भगवतीदास के नाम से उपलब्ध है। यहाँ दो-एक रचनाओं का अनुशीलन उपस्थित किया जाता है।

'चेतनकर्म चरित्र' इनका एक सुन्दर आध्यात्मिक रूपक काव्य है। इसकी कथावस्तु में बतलाया गया है कि चेतन की सुबुद्धि और कुबुद्धि नाम की दो भार्याएँ थीं। सुबुद्धि चेतन आत्मा की कर्म संयुक्त अवस्था को देखकर कहने लगी—'चेतन तुम्हारे साथ यह दुष्टों का संग कहाँ से आ गया ? तुम उनको दूर क्यों नहीं करते हो ?' चेतन—'हे महाभागे, मैं तो इस प्रकार फँस गया हूँ जिससे इस गहन पंक से निकलना असम्भव-सा लग रहा है।' सुबुद्धि पुनः चेतन को समझाती है जिससे चेतन कुबुद्धि को अपने घर से निकाल देता है। कुबुद्धि रूठकर अपने पिता मोह के घर चली जाती है और मोह विकारों की सेना सजाकर चेतनगढ़ को घेर लेता है। इधर चेतन की ओर से संयम, व्रत, समिति, अनुप्रेक्षा और गुणस्थान रूप योद्धा समरभूमि में आते हैं तथा मोह की ओर से मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय रूपी योद्धा जंग करते हैं। घमासान युद्ध होने के उपरान्त मोह की सेना तितर-बितर हो जाती है। कवि ने उक्त रूपक को लेकर ही इस काव्य की २९६ पद्यों में रचना की है। भावनाओं के अनुसार मधुर तथा परुष वर्णों का प्रयोग इस कृति में चमत्कार उत्पन्न करता है। युद्ध का वर्णन कितना सजीव हुआ है—

सूर बलवंत मदमत्त महामोह के, निकसि सब सेन आगे जु आये।
मारि घमासान महाजुद्ध बहु क्रुद्ध करि, एकतैं एक सातों सवाये॥
वीर सुविवेक ने धनुष ले ध्यान का, मारिकैं सुभट सातों गिराये।
कुमुक जो ज्ञान की सेन सब संग धसी, मोह के सुभट मूर्च्छा सवाये॥

'पंचेन्द्रिय संवाद' और 'मधुबिन्दुक चौपाई' भी सुन्दर रचनाएँ हैं, इन दोनों काव्यों का लक्ष्य भी आत्मतत्व को पहचानना है।

'लघु सीता सतु' खण्डकाव्य है। इसमें कवि ने सीता के सतीत्व की झाँकी दिखलाई है। बारह मासों में मन्दोदरी सीता के प्रश्नोत्तर के रूप में रावण और मन्दोदरी की चित्तवृत्ति का सुन्दर विश्लेषण किया है। मानसिक घात

प्रतिघातों का चित्र बड़ी चतुराई से खींचा गया है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

तब बोलइ मन्दोदरी रानी। सखि अषाढ़ घनघट घहरानी ॥
पीय गये ते फिर घर आवा। पामर नह नित मन्दिर छावा ॥
लवहि पपीहे दादुर मोरा। हियरा उमग धरत नहिं धीरा ॥
बादर उमहि रहे चौपासा। तिय-पिय बिनु लहिं उसन उसासा ॥
नन्हीं बून्द झरत झर लावा। पावस नभ आगमु दर सावा ॥
दामिनि दमकत निशि अंधियारी। विरहिनि काम बान उर मारी ॥
भुगवहि भोगु सुनहि सिख मोरी। जानति काहे भई मति बौरी ॥
मदन रसायन इह जग सारू। संजमु नेमु कथन विवहारू ॥

जब लग होस शरीर महिं, तब लग कीजइ भोगु।
राज तजहिं भिक्षा भमहिं, इउ भूला सब लोगु ॥

ब्रह्मगुलाल कवि ने 'कृपण जगावन' काव्य रचा है। ये पद्मावती पुरवाल जाति के थे। ये चन्दवार—फिरोजाबाद के पास टापू नामक गाँव के निवासी थे। कृपण जगावन काव्य की प्रशस्ति में बतलाया गया है कि ये भट्टारक जगभूषण के शिष्य थे। टापू गाँव के राजा कीरतसिंह थे। इस गाँव में धरमदास के कुल में मथुरामल्ल नाम के एक व्यक्ति थे। ये ब्रह्मचर्य के पालन करने में प्रसिद्ध थे। कवि ने इन्हीं के उपदेश से सं० १६७१ में उक्त काव्य ग्रन्थ की रचना की है। इस काव्य की कथावस्तु रोचक और सरस है।

राजगृह नगर में वसुमति राजा शासन करता था। इस नगर में श्रेष्ठि पुत्री क्षयंकरी रहती थी। राजा ने मुनिराज से क्षयंकरी की भवावली पूछी। मुनि कहने लगे—यह पहले भव में उज्जैन के सेठ धवल की पत्नी थी, इसका नाम मल्लि था। उज्जैन के राजा पद्मनाथ ने अष्टाह्निका उत्सव सामूहिक रूप से मनाया, धवल सेठ भी इसमें शामिल हुआ, पर मल्लि सेठानी को यह नहीं रुचा। पूजा के लिए सामग्री और पकवान बनाये अवश्य, किन्तु अच्छी वस्तुएँ न लेकर सड़े-गले सामान से सामग्रियाँ तैयार कीं, जिनसे मुनियों को आहार नहीं दिया जा सका। मल्लि की भावनाएँ सदा कलुषित रहती थीं, दान कर्म में एक कानी कौड़ी भी खर्च करने में उसके प्राण सूखते थे। इसी कारण पति से निरन्तर संघर्ष होता रहता था, फलतः उसे कुष्ठ रोग हुआ है। मुनिराज ने उसे पुरुषों की कंजूसी के आख्यान भी बतलाए। इन्हीं आख्यानों

को सुनकर क्षयंकरी को विरक्ति हो गयी और वह आत्म-साधन में तत्पर हुई। इस काव्य में जीवन के कतिपय तत्वों का बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है।

इस काल में बनारसीदास और भगवतीदास के अतिरिक्त पद रचयिताओं में आनन्दघन का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। ये उपाध्याय यशोविजय के समकालीन थे। इनका 'आनन्दघन बहत्तरी' नामक कविता संग्रह उपलब्ध है। ये आध्यात्मिकता से ओतप्रोत पहुँचे हुए आत्म-रसिक सन्त थे। इन्होंने अपने अन्तस में आत्मतत्व की महत्ता का अनुभव कर आध्यात्मिक धरातल पर मानव मात्र का उत्कर्ष दिखलाया है तथा ऐन्द्रियिक आनन्द को निकृष्ट और हीन बतलाकर इन्द्रियातीत, अलौकिक आनन्द की अभिव्यंजना की है। आत्मा की अमरता का भाव निम्न पद्य में कितनी सुन्दरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है।

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारन मिथ्यात दियो तजि, क्योंकर देह धरेंगे ॥१॥
राग-द्वेष जग बन्ध करत हैं, इनको नाश करेंगे।
मर्यो अनन्त काल तें प्राणी, तो हम काल हरेंगे ॥२॥
देह विनाशी, हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी नासी हम थिरवासी, चोखे ह्वै निखरेंगे ॥३॥
मर्यो अनन्तबार बिन समझे, अब सो सुख विसरेंगे।
'आनन्दघन' निपट निकट अक्षर दो, नहिं सुमरै सो मरेंगे ॥४॥

यशोविजयके पद्यों का संग्रह 'जसविलास' नामसे प्रकाशित हुआ है। इनके पदों में भावनाएँ तीव्र आवेगमय और संगीतात्मक प्रवाह में प्रस्फुटित हुई हैं। भाषा में लाक्षणिक वैचित्र्य के स्थान पर सरलता और सरसता है। पदों में प्रधान रूप से आध्यात्मिक भावों की अभिव्यंजना की गयी है।

इस काल के प्रथम श्रेणी के कवियों में कवि भूधरदास की भी गणना की जाती है। ये आगरा के निवासी और जाति के खण्डेलवाल थे। इनका समय १७ वीं शताब्दी का अन्तिम भाग या १८ वीं शती का प्रारम्भिक भाग है। इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—'पार्श्व पुराण' (महाकाव्य), 'जैन शतक' और 'पद संग्रह'।

'पार्श्व पुराण' की कथा बड़ी रोचक और आत्म पोषक है। वैर की परम्परा किस प्रकार जन्म-जन्मान्तरों तक चलती है, यह इसमें बड़ी खूबी के साथ

बतलाया गया है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ का जीवनवृत्त वर्णित है। इसकी कथा वस्तु महाकाव्य की है। नायक पार्श्वनाथ का जीव अपने समय के समाज का प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक मांगल की रक्षा के लिए बद्ध परिकर है। कवि ने कथा में क्रमबद्धता का पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युगभावना का प्राधान्य सर्वत्र है। परिस्थिति निर्माण में पूर्व के नौ भवों की कथा जोड़कर कवि ने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवन का इतना सर्वाङ्ग और स्वस्थ विवेचन अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।

जैन शतक में भूधरदास ने वैराग्य भावना को उद्दीप्त करने का विधान बतलाया है। इसके कवित्त, सवैये, छप्पय बड़े ही सरस, प्रवाहपूर्ण, लोकोक्ति समाविष्ट एवं जोरदार हुए हैं। वृद्धावस्था, संसार की अस्थिरता, काल, सामर्थ्य, स्वार्थपरता, दिगम्बर मुनियों की तपस्या, आशा-तृष्णा की नग्नता आदि विषयों का निरूपण बड़ी ही ओजस्वी शैली में किया गया है। विषय निरूपण की शैली उदात्त है। भावों को विशद करने में कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। जहाँ शृङ्गारी कवियों ने नायिका के स्तनों को स्वर्णकलश की और उनके श्यामल अग्रभाग को नीलमणि की ढंकनी की उपमा देकर प्रशंसा की, वहाँ भूधरदास ने उन्हें आमिष पिण्ड तथा श्यामल भाग को क्षार-राख कहकर भर्त्सना की है। उदाहरण निम्न प्रकार है :[१२]

> कंचन कुम्भन की उपमा, कहि देत उरोजन को कवि बारे।
> ऊपर श्याम बिलोकन के, मानौं, नीलम की ढंकनी ढंक ढारे।।
> यों सत बैन कहै न कुपण्डित, ये युग आमिष पिण्ड उघारे।
> साधन झार दई मुँह छार, भये इति हेत किधौ कुच कारे।।

कवि भूधरदास ने पद साहित्य भी लिखा है। इन्होंने गीतिकाव्य की सभी बारीकियाँ अपने पदों में प्रदर्शित की हैं। इन्होंने स्थूल को छोड़कर सूक्ष्म सौन्दर्य को अभिव्यक्त किया है। यद्यपि इन्होंने बाह्य सौन्दर्य का भी पर्यवेक्षण किया है, पर वह इन्हें स्थिरता प्रदान नहीं कर सका है। यही कारण है कि इनके पदों में भावुकता के सहारे करुण रस और आत्म वेदना की अभि-व्यंजना हुई है। इनके पदों में शाब्दिक कोमलता, भावनाओं की मादकता और कल्पनाओं का इन्द्रजाल समन्वित रूप में विद्यमान है। इनके पद स्तुति-परक, जीव की अज्ञानावस्था के परिणाम और निस्तार सूचक, आराध्य की

[१२] जैन शतक, पद्य ६५।

शरण के दृढ़ विश्वास सूचक, आत्मोपदेशी, संसार और शरीर से विरक्ति उत्पादक, नाम स्मरण के महत्त्व द्योतक और मनुष्यता के पूर्ण अभिव्यंजक, इन सात वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं।

खेमचन्द तपागच्छ की चन्द्रशाखा के पण्डित थे। इनके गुरु का नाम मुक्तिचन्द्र था। इन्होंने नागर देश में संवत् १७६१ में 'गुणमाला चउपई' अथवा "गजसिंह गुणमाल चरित' की रचना की है। यह अच्छा काव्य है, इसकी भाषा पर गुजराती प्रभाव है।

द्यानतराय भी इस युग के उत्तम कवियों में हैं। ये आगरा के निवासी थे। इनका जन्म अग्रवाल जाति के गोयल गोत्र में हुआ था। इनके पूर्वज लालपुरा से आकर आगरा में बस गये थे। इनके पितामह का नाम वीरदास और पिता का नाम श्यामलदास था। इनका जन्म संवत् १७३३ में और विवाह संवत् १७४८ में हुआ था। उस समय आगरा में मानसिंहजी की धर्मशैली थी। कवि धनपत राय ने उससे लाभ उठाया। कवि को पण्डित बिहारीदास और पण्डित मानसिंह के धर्मोपदेश से जैन धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। इन्होंने सम्वत् १७७७ में सम्मेद शिखर की यात्रा की। इनकी कविताओं का संग्रह "धर्म विलास" नाम से प्रसिद्ध है। इस संकलन को कवि ने स्वयं संवत् १७८० में किया था। इस संकलन में ४५ विषयों पर फुटकर कविताएँ और ३३३ पद संग्रहीत हैं। 'उपदेश शतक', 'व्यौहार पच्चीसी' और 'पूर्ण पंचासिका' इनकी बहुत सुन्दर रचनाएँ हैं।

'उपदेश शतक' में १२१ पद्य हैं। इसमें मंगलाचरण के पश्चात् भक्ति और स्तुति की आवश्यकता, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की महिमा, गृहवास का दुःख, इन्द्रियों की दासता, नरक निगोद के दुःख, पाप-पुण्य की महत्ता, धर्म का महत्व, ज्ञानी-अज्ञानी का चिन्तन, आत्मानुभूति की विशेषता, शुद्ध आत्म स्वरूप नवतत्व स्वरूप आदि का प्रतिपादन किया गया है। 'दानबावनी' में कवि ने दान का महत्व और उसके आदर्श का विश्लेषण किया है। अतिथि सत्कार का वर्णन करते हुए कहा गया है :

मौन कहाँ जहाँ साधन आवत, पावन सो सो भुवि तीरथ होई।
पाय प्रछाल कैं काय लगाय कैं, देह की सर्व विथा नहीं खोई ॥
दान कर्यो नहि पेट भर्यो बहु, साध की आवन वार न जोई।
मानुष जोनिकौं पायकैं मूरख, काम की बात करो नहिं कोई ॥

इस युग में कवि बनारसीदास के समकालीन रूपचन्द भी हैं। इन्होंने 'परमार्थ दोहा शतक', 'परमार्थ गीत', 'पद संग्रह', 'गीत परमार्थी', 'पंचमंगल' एवं 'नेमिनाथ रास' की रचना की है। राजमल्ल, पाण्डे जिनदास, कुंवरपाल, पाण्डे हेमराज, बुलाकीदास, किशनसिंह, खड्गसेन, रामचन्द्र, शिरोमणिदास मनोहरलाल या मनोहरदास, जयसागर, खुशालचन्द काला, लब्धरुचि, लोहट, ब्रह्मरायमल भी अच्छे कवि हैं।[१३]

अर्वाचीन काल में कवि वृन्दावन, बुधजन, मनरंग, भागचन्द, दौलतराम, बखतावरमल, जगमोहनदास, परमेष्ठिदास आदि प्रमुख हैं।

कवि वृन्दावन का जन्म शाहाबाद जिले के बारा नामक गाँव में संवत् १८४८ में हुआ था। ये गोयल गोत्री अग्रवाल थे। कवि के वंशधर बारा छोड़कर काशी में रहने लगे थे। कवि के पिता का नाम कर्मचन्द्र था। १२ वर्ष की अवस्था में वृन्दावन अपने पिता के साथ काशी आए। काशी में ये लोग बाबर शहीद की गली में रहते थे।

वृन्दावन की माता का नाम सिताबी और स्त्री का नाम रुक्मिणी था। इनकी पत्नी बड़ी धर्मात्मा और पतिव्रता थी। इनकी ससुराल भी काशी के ठठेरी बाजार में ही थी। इनके श्वसुर बड़े धनिक थे। इनके यहाँ टकसाल का काम होता था। एक दिन एक किरानी अंग्रेज इनके श्वसुर की टकसाल देखने आया। वृन्दावन भी उस समय वहीं उपस्थित थे। जब किरानी अंग्रेज ने इनके श्वसुर से कहा—"हम तुम्हारा कारखाना देखना चाहते हैं कि इसमें कैसे सिक्के तैयार होते हैं"—तब वृन्दावन ने इस अंग्रेज किरानी को फटकार दिया और उसे टकसाल नहीं दिखाई। वह अंग्रेज नाराज होता हुआ चला गया।[१४]

[क्रमशः

---

१३ हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, प्रथम भाग, पृ० १७३-२०६ तथा आमेर शास्त्र भण्डार के ग्रन्थों का प्रशस्ति संग्रह, प्रस्तावना भाग, पृ० १७-२२।

१४ रचनाओं और कवियों की विशेष जानकारी के लिए देखें- [illegible]न विलास की प्रस्तावना—आद्योपान्त, तथा नाथूराम प्रेमी का हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ६०-८०।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ कहाँ/क्या

अमर भारती ।। अगस्त १९८०

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'वैदिक और जैन धर्म एक तुलनात्मक विश्लेषण' (पं० के० भुजबली शास्त्री), 'पुद्गल का स्वरूप' (श्री विजय मुनि), 'महावीर का महान् ऋण' (स्व० डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्), 'बत्तीस सूत्रों की मान्यता पर विचार' (अगरचन्द नाहटा)।

जर्नल अव द ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट ।। मार्च-जून १९८०

इस अंक में है 'The Adaptation of Visnu-Bali Legend by Jaina Writers' (Jagadish Chandra Jain)।

श्रमण ।। अगस्त १९८०

'जैन दर्शन में मुक्ति की अवधारणा' (पाण्डेय रामदास 'गम्भीर'), 'क्या भगवान महावीर के विचारों से विश्व - शान्ति सम्भव है ?' (कुमारी मंजुला मेहता), 'अनेकान्तवाद की व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता' (शीतलचन्द्र जैन)।

श्रमणोपासक ।। अगस्त १९८०

आचार्य श्री नानालालजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'मुक्ति का प्रवेश द्वार : सम्यक्त्व' (रतनलाल जैन)।

Vol. IV No. 5 : Titthayara : September 1980
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001